THE TIMES OF INDIA

Date: 14-09-24

Bail & More

SC frees Kejriwal. But some questions remain.

TOI Editorials

That SC finally granted Kejriwal bail in the CBI case – he had got bail in the ED case earlier – settles some key questions via a high-profile legal tussle. But it raises a few other questions. The two-judge bench unanimously held that with completion of trial unlikely in the near future, Delhi CM's prolonged incarceration violates his right to liberty. SC's decision was foretold by its granting bail to several excise policy accused, including AAP's Manish Sisodia and BRS's K Kavitha, in recent months. SC has been reiterating the judicial principle that bail is the norm and jail the exception. Yesterday, Justice Bhuyan also stressed that keeping Kejriwal in jail was untenable since he had been granted bail in the more stringent PMLA case against him.

But bail conditions? | Just as significant is Justice Bhuyan's view that Delhi CM's arrest by CBI in June raised more questions than it answered. With the same conditions imposed on him in the ED case applying now, Kejriwal cannot visit his office or sign official files. On this too, Justice Bhuyan expressed reservations. Kejriwal is responsible for governance of the capital. Wouldn't it have been enough to set conditions that kept him away from anything related to excise policy? SC itself has stressed the importance of bail conditions being reasonable in several cases.

What about Delhi? | Yet, CM's prolonged incarceration or his conditional bail can't be cited by AAP to explain away the misgovernance Delhi is subjected to. For a party that won 62 of 70 seats in last assembly elections and controls Delhi's municipal corporation, there can be no justification for civic woes remaining unaddressed in the capital. As for BJP, while it has a point that AAP seems flailing at governance, it won't admit that changes in admin rules have handicapped the elected govt. This fight reminds you of driving through waterlogged Delhi streets – there's no end in sight.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 14-09-24

Tirth & Cheese, Up Faith Tourism Stakes

Proof of execution for pilgrims' progress.

ET Editorials

Religious tourism within India has taken a big jump with rise in connectivity. The country could take the idea forward to boost international tourism. Culture is among the biggest draws India has for the foreign tourist. Policy encouragement to improve air linkages and hospitality could spur inbound leisure travel. There are successful models among larger cities of co-development of aviation and hospitality infrastructure that can be replicated in select religious circuits, such as the Buddhist one spread across Bihar, Uttar Pradesh and Nepal as suggested by Narendra Modi. The reason to visit exists for the faithful. It's a matter of making travel and stay more pleasant while pondering larger existential questions.

The existing Buddha circuit has come up with the assistance of countries with large Buddhist populations. But it's nowhere near the potential it could achieve. International flights into the circuit would be needed from cities apart from national capitals across Asia. The hospitality on offer should be able to cater to much more culturally-diverse travellers. Add-on attractions must come up to showcase the local culture. Skilling has to be addressed for the employment such enterprise generates. Done right, this can offer strong competition to convention tourism, where India trails most among the developed tourism hubs in Asia.

Foreign tourists seeking an enhanced cultural experience in India can offer a way out of the overdependence of domestic religious tourism. The local variety is driven by the unorganised sector and holds little attraction for the international traveller. But it racks up the numbers that are exerting undue pressure on the country's tourism infra. Developing alternative religious or cultural circuits would deal with the sustainability issue. The proof of concept exists in the domestic tourism industry. What India needs is proof of execution for high-end religious tourism. One success story can throw up several others. Spirituality is as powerful a motivator for people to travel as sun and sand.

दैनिक भास्कर

Date: 14-09-24

केजरीवाल की जमानत और उसके मायने

संपादकीय

शराब नीति से जुड़े सीबीआई केस में दिल्ली के मुख्यमंत्री को सुप्रीम कोर्ट की दो सदस्यीय बेंच ने जमानत दे दी। सीएम ने तीन आधार पर जमानत मांगी थी- जांच में असाधारण देरी, सीएम के स्तर के व्यक्ति के दूसरे देश भागने की आशंका निराधार और सारे दस्तावेज कोर्ट में प्रस्तुत, लिहाजा उनके बदले जाने का खतरा नहीं। दोनों जजों ने इन तीनों आधारों को सही माना। हालांकि सीबीआई द्वारा गिरफ्तारी को जहां एक जज ने सही ठहराया, वहीं दूसरे जज ने उसकी मंशा, समझ और कदम को लेकर नकारात्मक टिप्पणी की। इस फैसले का सबसे गंभीर पहलू यह रहा कि जहां एक जज ने जमानत की शर्तें वहीं रखीं, जो पीएमएलए के मामले में कोर्ट ने रखी थी कि सीएम ऑफिस नहीं जाएंगे, किसी फाइल पर दस्तखत नहीं करेंगे (जरूरी होने पर जब तक

एलजी की अनुमति न हो), वहीं दूसरे जज ने 'न्यायिक अनुशासन' के सिद्धांत के अनुपालन में कुछ भी टिप्पणी नहीं की। इसका सीधा मतलब है सीएम जेल से तो बाहर होंगे लेकिन सीएम के काम से वंचित रहेंगे। यहां सवाल यह उठता है कि जिस फैसले में संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित 'जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता' की दुहाई दी गई, उसके अनुसार क्या केवल जेल से छोड़ना इस अनुच्छेद की भावना को पूरा करता है? क्या यह पूरी आजादी होगी ?

दैनिक जागरण

Date: 14-09-24

सीबीआइ पर सवाल

संपादकीय

आबकारी नीति घोटाले में अंततः दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को भी सुप्रीम कोर्ट से जमानत मिल गई। ऐसा होने के आसार इसलिए बढ़ गए थे, क्योंकि उनके पहले इस मामले में जेल भेजे गए अन्य लोगों को भी जमानत मिल चुकी थी। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने केजरीवाल को जमानत देते समय उन पर कई शर्तें लगाईं और उनके तहत वह मुख्यमंत्री कार्यालय नहीं जा सकते और किसी सरकारी फाइल पर उपराज्यपाल की अनुमति के बिना हस्ताक्षर भी नहीं कर सकते, लेकिन उन्हें जमानत देते समय सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश ने जिस तरह यह कहा कि सीबीआइ को अपने को पिंजरे के तोते वाली छवि से मुक्त करना चाहिए, वह इस एजेंसी के लिए एक बड़ा आघात है।

यह ठीक है कि उक्त न्यायाधीश ने केजरीवाल की गिरफ्तारी को अवैध नहीं कहा, लेकिन उन्होंने गिरफ्तारी के समय पर यह सवाल उठाते हुए सीबीआइ को असहज ही किया कि आखिर उसने उन्हें तब क्यों गिरफ्तार किया, जब उन्हें ईडी के मामले में जमानत मिल गई थी? यदि इस सवाल के चलते आम आदमी पार्टी के नेता सीबीआइ की निष्पक्षता पर सवाल उठा रहे हैं तो उन्हें गलत कैसे कहा जा सकता है?

यह पहली बार नहीं है, जब सीबीआइ को सुप्रीम कोर्ट से यह सुनना पड़ा हो कि वह सरकार के दबाव और प्रभाव में काम करती है। इसके पहले मनमोहन सरकार के समय कोयला खदान आवंटन में घोटाले की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने उसे पिंजरे का तोता कहा था। यह ठीक नहीं कि सीबीआइ इस छवि से बाहर नहीं आ पा रही है कि वह सरकार के इशारे पर काम करती है। सीबीआइ की ऐसी छवि मोदी सरकार पर भी एक सवाल है, जिसकी ओर से यह दावा किया जाता है कि यह एक स्वतंत्र एजेंसी है और उसके कामकाज में उसका कोई दखल नहीं।

केजरीवाल की जमानत पर पक्ष-विपक्ष के दावों के बीच इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि सुप्रीम कोर्ट ने फिर से यह रेखांकित किया कि जमानत नियम और जेल अपवाद है। वह यह बात पहले भी कई बार कह चुका है। क्या उसकी यह बात निचली अदालतों और यहां तक कि उच्च न्यायालयों तक पहुंच नहीं पा रही है? यह प्रश्न इसलिए, क्योंकि अरविंद केजरीवाल हों या मनीष सिसोदिया अथवा के. कविता या फिर अन्य मामलों में जेल गए दूसरे नेता, उन्हें आमतौर पर जमानत तभी मिल सकी, जब सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया गया। आखिर लोगों को निचली अदालतों और उच्च न्यायालयों से जमानत क्यों नहीं मिल पाती? यह वह प्रश्न है, जिसका उत्तर न्यायपालिका को देना है और यह दिया ही जाना चाहिए। इसी तरह यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि अधिकांश मामलों में ट्रायल शुरू होने में देरी क्यों होती है? ध्यान रहे कि सुप्रीम कोर्ट प्रायः जमानत इसलिए भी दे देता है, क्योंकि यह पता नहीं होता कि ट्रायल कब शुरू होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 14-09-24

प्रशासनिक सुधार पर जल्द कदम उठाए सरकार

अजय छिब्बर, (लेखक जॉर्ज वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी में अतिथि शिक्षक हैं)

अफसरशाही यानी ब्यूरोक्रेसी में बड़े पदों पर निजी क्षेत्र से विशेषज्ञों की सीधी नियुक्ति (लैटरल अपॉइंटमेंट्स) पर छिड़ी बहस के बीच एक बड़े मसले की अनदेखी हो गई है। यह मसला है आर्थिक सुधारों के साथ बड़े प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता। ई-सेवाओं में काफी इजाफा होने के बाद भी कारोबारियों और नागरिकों के लिए भारतीय ब्यूरोक्रेसी के साथ काम करना या सामंजस्य बिठाना बहुत कठिन रहा है। इस बात की शिकायतें भी लगातार होती रही हैं।

अगर भारत दुनिया की शीर्ष कंपनियों के लिए चीन का विकल्प बनना चाहता है तो उसे यह बात अवश्य समझनी चाहिए कि चीन ने 1995 में एक बड़ा प्रशासनिक सुधार किया था। यह सुधार उसने आर्थिक उदारीकरण के 15 वर्षों बाद किया और अपनी सरकार को आधुनिक जामा पहना डाला। भारत में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) सरकार के पहले कार्यकाल में प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की गई और देश में आर्थिक सुधारों की शुरुआत के 15 वर्ष बाद दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने 1,600 से अधिक सुझाव दिए। परंतु जैसा सुधार चीन में हुआ था वैसा बेहद आवश्यक और व्यापक प्रशासनिक सुधार भारत में नहीं हो पाया।

मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल की शुरुआत हो चुकी है और अब समय आ गया है कि हम लंबे समय से अटके प्रशासनिक सुधारों को आगे बढ़ाएं। क्या ये सुधार हो पाएंगे और उनके क्या मायने होंगे? अंतरराष्ट्रीय

मानकों से तुलना करें तो भारत में सिविल सेवा का आकार बहुत छोटा है और इसकी बनावट में बड़े बदलाव की जरूरत है। इसमें क्लर्कों और प्रशासनिक कर्मियों की संख्या बहुत अधिक है किंतु तकनीकी विशेषज्ञों, शिक्षकों और स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या काफी कम है। 1990 के दशक में कुल रोजगार में सामान्य सरकारी रोजगार की हिस्सेदारी लगभग 1 प्रतिशत थी, जो उस समय एशिया में सबसे कम थी। उसके बाद से अनुपात बढ़ा जरूर है मगर ज्यादातर वृद्धि सुरक्षा एजेंसियों में हुई है। अधिकतर एशियाई देशों में यह 2 प्रतिशत से अधिक और मलेशिया तथा श्रीलंका में 3 प्रतिशत से अधिक है।

सिविल सेवा का आकार बेशक छोटा है मगर इस पर खर्च बहुत अधिक होता है। भारत में सामान्य सरकारी कर्मचारी के औसत वेतन और प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का अनुपात लगभग 4 है, जो दुनिया में सबसे अधिक अनुपातोंमें है। एशिया के अधिकतर देशों में यह अनुपात 1 (वियतनाम और चीन) और 2.5 (इंडोनेशिया, श्रीलंका, फिलीपींस) के बीच रहा है। दक्षिण कोरिया, थाईलैंड और मलेशिया में भी सामान्य सरकारी कर्मचारी के औसत वेतन और प्रति व्यक्ति जीडीपी अनुपात लगभग 3 से 4 के बीच रहा है। अरब देशों और तुर्किये में यह अनुपात लगभग 2 से 3 के बीच है। आम धारणा के उलट भारत में सरकारी तंत्र जरूरत से काफी कम है मगर देश की आय की तुलना में काफी खर्चीला है। यहां सरकारी तंत्र काफी हस्तक्षेप करने वाला माना जाता है, जबकि इसके पास न तो पर्याप्त लोग हैं और न ही कारगर परिणाम देने की क्षमता है।

भारत में ब्यूरोक्रेसी में शीर्ष पदों पर बैठे लोगों को काफी कम और निचले स्तर पर बैठे लोगों को काफी अधिक वेतन दिया जाता है। यह अंतर या कम्प्रेशन रेश्यो (सर्वोच्च और सबसे निचले दायरे में आने वाले लोगों के बीच औसत वेतन का अनुपात) काफी कम हो गया है। यह स्थिति इसलिए पैदा हुई क्योंकि शीर्ष पदों पर बैठे लोगों का वेतन कम रखा गया और निचले पदों के लिए वेतन तेजी से बढ़ा दिया गया।

सातवें वेतन आयोग के अनुसार ग्रेड सी के शुरुआती स्तर के वेतन और ग्रेड 'ए' के शुरुआती वेतन में कम्प्रेशन रेश्यो 3.12 है मगर दोनों ग्रेड में सर्वाधिक वेतन पाने वाले कर्मियों के लिए रेश्यो 3.74 ही है। सिविल सेवा में शीर्ष स्तर पर वास्तविक वेतन निजी क्षेत्र की तुलना में काफी कम हो गया है जबकि निचले स्तर पर वेतन (अन्य लाभ सहित) निजी क्षेत्र की तुलना में अधिक है।

इसका मतलब हुआ कि ऊंचे स्तरों निर्णय लेने के अधिकार वाले कर्मचारियों का वेतन कम हुआ है, जिसके कारण उनकी गुणवत्ता में भी कमी आई है। इनकी तुलना में निचले स्तरों पर काम करने वाले लोग, जो सरकार के श्रम बल का 90 प्रतिशत हिस्सा हैं, निजी क्षेत्र की तुलना में काफी अधिक वेतन पा रहे हैं। ऐसे में सरकारी नौकरी की लालसा हैरत की बात नहीं है।

सरकारी नौकरी में सुरक्षा अधिक रहती है और निचले स्तरों पर वेतन-भत्ते भी काफी अधिक मिलते हैं। ब्यूरोक्रेसी के शीर्ष पर प्रशासनिक सेवा के लोग बैठते हैं, जो सक्षम भी हैं और चतुर भी हैं मगर अपने क्षेत्रों में दुनिया भर में हो रहे बदलावों के हिसाब से ढलने के लिए जरूरी विशेषज्ञता प्राप्त करने का समय ही उनके पास नहीं है।

भारत को होड़ में आगे रखने के वास्ते उन्हें अपने क्षेत्रों में सरकारी नीतियां आगे बढ़ाने के लिए जो तकनीकी हुनर चाहिए वह अक्सर उनके पास होता ही नहीं है। उन्हें अपने काम में लगातार अत्यधिक राजनीतिक हस्तक्षेप का सामना करना पड़ता है। योग्यता को तवज्जो देने वाली संस्कृति बनाए रखनी है तो जिंदगी भर आरामतलबी के साथ प्रोन्नति का चलन छोड़कर नियमित परीक्षाओं के जरिये प्रोन्नति वाली अधिक पेशेवर और प्रदर्शन पर आधारित सिविल सेवा तैयार करनी होगी।

पूर्वी एशिया के देशों जैसे जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर और ताइवान की सिविल सेवा प्रणाली से भारत काफी कुछ सीख सकता है। ब्यूरोक्रेसी में शीर्ष पर अधिक विशेषज्ञता की जरूरत है, औपनिवेशिक प्रणाली से विरासत में मिले पुराने ढर्रे वाले चालू तंत्र की नहीं। विशेषज्ञता लाने के लिए सिविल सेवा अधिकारियों को शुरू से ही कार्य कुशल एवं दक्ष बनाने की जरूरत है।

उदारीकरण के बाद से भारत में कई नियामकीय संस्थाएं बनी हैं, जिनकी कमान तकनीकी दक्षता वाले किसी विशेषज्ञ के बजाय अक्सर सेवानिवृत्त वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों को सौंपी जाती रही है। दुनिया के अन्य देशों में नियामकीय इकाइयों की कमान अमूमन विशेषज्ञ संभालते हैं। भारत को अधिक पारदर्शी और कम जटिल आधुनिक नियामकीय ढांचे की जरूरत है, जिसकी कमान संबंधित क्षेत्र की खास समझ रखने वाले पेशेवरों के हाथों में हो न कि सेवानिवृत्त अधिकारियों के पास। इनकी नियुक्ति खुली प्रतियोगिता से होनी चाहिए। भारत को ऐसी प्रणाली की जरूरत है, जो निजी निवेश की प्रक्रिया बाधित किए बिना नियामकीय स्तर पर सांठगांठ कम करे।

भारत का सार्वजनिक व्यय बहुत अधिक नहीं है मगर इसका आवंटन ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। सरकार के कुल व्यय का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा विकास कार्यों से अलग खर्च होता है। इसका एक बड़ा हिस्सा प्रशासनिक अधिकारियों के वेतन, पेंशन और ब्याज चुकाने में खर्च होता है। भारत केंद्र एवं राज्य स्तरों पर काफी रकम खर्च करता है मगर स्थानीय निकायों के स्तर पर बहुत ही कम रकम (4 प्रतिशत) आवंटित की जाती है। अगर स्थानीय निकायों के स्तर पर पर्याप्त रकम खर्च की जाए तो अधिक शिक्षक, नर्स और कंपाउंडर की भर्ती हो सकेगी क्योंकि इन स्तरों पर वेतन राज्य की राजधानियों या केंद्र की तुलना में कम होते हैं। इतना ही नहीं, इससे स्थानीय स्तर पर इन लोगों के प्रदर्शन की निगरानी भी हो सकेगी।

क्या मोदी सरकार अपने तीसरे कार्यकाल में अपनी सरकार के आधुनिकीकरण के लिए जरूरी प्रशासनिक सुधार को आगे बढ़ाएगी? इसका अनुमान लगाना मुश्किल है क्योंकि फिलहाल देश में गठबंधन सरकार है इसलिए लेटरल अपॉइंटमेंट जैसे मसले पर भी बात अटक गई। अगर भारत 21वीं शताब्दी में 'विकसित भारत' का सपना साकार करना चाहता है तो यह औपनिवेशिक काल के तर्ज काम नहीं कर सकता। सरकार के व्यापक आधुनिकीकरण का समय संभवतः आ गया है। लेटरल अपॉइंटमेंट की भी अपनी भूमिका (खासकर विशेष एजेंसियों एवं नियामकीय ढांचों की अध्यक्षता में) है मगर प्रमुख सरकारी कार्यों के लिए पेशेवर रूप से अधिक दक्ष एवं कुशल सिविल सेवा की आवश्यकता है।

जनसत्ता

Date: 14-09-24

परेशानियों के पहाड़ पर हिमालय

जय प्रकाश त्रिपाठी

दुनिया भर में हुए अध्ययनों से स्पष्ट है कि हिमालय भूगर्भीय हलचलों और वैश्विक तपिश यानी ग्लोबल वार्मिंग के दोहरे दबाव में सिसक रहा है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआइ) के अनुसार, हमारे देश का लगभग 15 फीसद भूभाग भूस्खलन के लिए अत्यधिक संवेदनशील है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण हिमालयी राज्यों को सबसे अधिक भूस्खलन-प्रवण क्षेत्रों के रूप में सूचीबद्ध कर चुका है। जलवायु आपदाओं और भूगर्भीय हलचलों के बीच महत्त्वपूर्ण भावी परिवर्तनों की दृष्टि से विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के आधार पर, भविष्य की आबादी का जोखिम मुख्यत: पूर्वी और मध्य हिमालय में केंद्रित है, जहां आबादी और झीलों का घनत्व सर्वाधिक है। मध्य हिमालय सबसे अधिक जोखिम वाला क्षेत्र है। सबसे अधिक खतरनाक पूर्वी हिमालय की ग्लेशियर झीलें हैं। लाखों लोग ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं, जो संभावित रूप से बड़ी आपदाओं से घिरे हैं।

भू-वैज्ञानिकों का कहना है कि खड़ी ढलानें, टेक्टोनिक गतिविधियां, तीव्र मानसूनी बारिश और चट्टान-मिट्टी की संरचना की नाजुक प्रकृति इस खतरे को लगातार बढ़ा रही है। उत्तराखंड में 2018 में जटिल भूविज्ञान और टेक्टोनिक गतिविधि वाले क्षेत्र केदारनाथ में भूस्खलन भारी बारिश के कारण हुआ था। हिमालय क्षेत्र में लगातार हो रही 'टेक्टोनिक' हलचलों के कारण भूकम्पीय गतिविधियां बनी रहती हैं। वनों की कटाई, सड़कों का निर्माण और शहरीकरण जैसी मानवीय गतिविधियां प्राकृतिक परिदृश्य और ढलान स्थिरता को बदल देती हैं, जिससे हिमालयी क्षेत्र में भूस्खलन की संभावना बढ़ जाती है। उचित इंजीनियरिंग और ढलान प्रबंधन के बिना पहाड़ी क्षेत्रों में सड़कों और बुनियादी ढांचे का निर्माण भूस्खलन का कारण बन सकता है।

भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआइ) ने उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश जैसे क्षेत्रों में भूस्खलन के खतरे का विस्तृत मानचित्रण किया है। यह मानचित्रण उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों की पहचान करने में मदद करता है और भूमि उपयोग नियोजन और आपदा प्रबंधन रणनीतियों को सूचित करता है। बीते दशक में हिमालय में भारी आपदाओं के कारण दस हजार से अधिक लोग जान गंवा चुके हैं। ऊंची पर्वतीय ढलानों की अस्थिरता भविष्य के बड़े खतरों का स्पष्ट संकेत बन चुकी है। महाविनाश के गहराते अंदेशों के बीच हिमालय के ऊपरी इलाकों में दरकते बुनियादी ढांचे व्यापक जनजीवन को खतरे में डाल सकते हैं। इसी तरह बाकी हिमालय का भी बुनियादी ढांचा कमजोर होता जा रहा है। जलवायु आपदा से ग्लेशियर पीछे हटने से नई-नई झीलें बन रही हैं। भूकम्पीय आवृत्तियां ढलानों को गंभीर रूप से झकझोर रही हैं। व्यापक अतिसंवेदनशील हलचलें पहाड़ों की ढलानों को अस्थिर करने के साथ ही हिमस्खलन और भूस्खलन तेज कर रही हैं।

भारतीय प्लेट के ऊपर स्थित यूरेशियन प्लेट के नीचे लगातार बड़े पैमाने पर ऊर्जा का जमा होना चिंता का विषय है। आने वाले समय में बड़े भूकम्प की भारी आशंका बनी हुई है। वैसी स्थिति में जान-माल का नुकसान न्यूनतम करने के लिए पहले से बेहतर तैयारी जरूरी है। भूकम्प से बचाव की ठोस रणनीति बनाकर जानमाल के नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। उत्तराखंड को भूकम्प के प्रति संवेदनशीलता के लिहाज से जोन चार और पांच में रखा गया है। बहुत पहले, भूकम्प और उसके कारण होने वाले भूस्खलन पर केंद्र सरकार को एक विस्तृत रपट भेजी गई थी। उसके पहले 'जियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' (जीएसआइ) ने भी वर्ष 2013 की आपदा के बाद पैदा हुई स्थिति पर एक विस्तृत रपट सौंपी थी। वाडिया संस्थान की रपट में भूस्खलन और बादल फटने के कारण आने वाली आपदा से बचने के लिए आबादी को वहां से हटाने की सिफारिश की गई है। आइआइटी, कानपुर के वैज्ञानिकों की शोध रपट बताती है कि हिमालयन रेंज यानी उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में कभी भी रिक्टर स्केल पर 7.8 से 8.5 की तीव्रता वाला भूकम्प आ सकता है। उनका कहना है कि धरती के नीचे भारतीय प्लेट व यूरेशियन प्लेट के बीच टकराव बढ़ रहा है।

विगत तीन दशक से जुटाए जा रहे 'इसरो' के डेटा से पता चला है कि ग्लेशियर पीछे की तरफ खिसक रहे हैं और झीलों का आकार बढ़ता जा रहा है। वर्ष 1984 से 2023 तक के आंकड़े बताते हैं कि हिमालय में 2431 झीलों का रकबा दस हेक्टेयर से ज्यादा है। उनमें से 676 ऐसी झीलें हैं, जो अनवरत विस्तृत होती जा रही हैं। उन 130 झीलों में से गंगा नदी के ऊपर सात बड़ी झीलें, सिंधु नदी पर 65 और ब्रह्मपुत्र के ऊपर 58 झीलें बन चुकी हैं। इनमें से दस झीलें दोगुने से ज्यादा बढ़ चुकी हैं। सबसे अधिक तेजी से हिमाचल प्रदेश के 4068 मीटर की ऊंचाई पर घेपांग घाट में बनी झील का ग्लेशियर 178 फीसद तक बढ़ चुका है। उत्तराखंड की 2013 की आपदा की दृष्टि से सोचें तो निकट भविष्य में ऐसी झीलों के गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

हिमालय के साढ़े छह सौ ग्लेशियरों के पिघलने के अध्ययन से पता चला है कि वर्ष 1975 से 2000 के जो हर साल औसतन चार अरब टन बर्फ पिघल रही थी, वर्ष 2000 से 2016 के बीच उसके पिघलने का परिमाण दोगुना हो गया, और उसके बाद से अब औसतन हर वर्ष लगभग आठ अरब टन बर्फ पिघल रही है। ग्लेशियर तेजी से सिकुड़ रहे हैं। बारिश के पैटर्न में तब्दीली और जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल तेजी से प्राकृतिक जोखिम को गहरा कर रहा है। भारी मात्रा में ग्लेशियर पिघलने का लोगों की आजीविका पर भयानक प्रभाव देखा जा रहा है। गंगा, सिंधु और मेकांग सहित क्षेत्र की बारह नदी घाटियों में जल प्रवाह 2050 के आसपास चरम पर होने का अंदेशा है। बार-बार बाढ़ से पानी की आपूर्ति घटती जाएगी, जिससे कृषि संकट गहराने का खतरा है।

वैज्ञानिकों के एक वर्ग का यह भी कहना है, हिमालय में विकास को रोकना समाधान नहीं है। सभी हितधारकों के परामर्श से विकास परियोजनाएं बनाने और दिशानिर्देशों के साथ उचित तरीके से उन पर काम करने की आवश्यकता है। जहां तक हिमालयी क्षेत्रों में भूगर्भीय हलचलों और जलवायु आपदाओं से हुए भारी नुकसान की बात है, आपदाओं को कम करने और उनके मूल कारण को समझने के लिए आज बहुपक्षीय सरोकार तेज करने की जरूरत है। अप्रैल 2021 से अप्रैल 2022 के बीच देश भर में भूस्खलन की 41 घटनाएं दर्ज की गईं, जिनमें से 38 हिमालयी राज्यों में तथा सर्वाधिक सिक्किम में हुई हैं। हाल के दशकों से बादल फटने जैसी हिमालयी

आपदाओं की जल्दी-जल्दी पुनरावृत्ति हो रही है और उनकी गंभीरता भी बढ़ती जा रही है। सर्वाधिक नुकसान हिमालय के ऊपरी क्षेत्रों में देखा जा रहा है। विकास के नाम पर मनमाना तोड़फोड़, पहाड़ों की खुदाई, बसावटी और व्यावसायिक दोनों तरह के निर्माण आदि पर रोक के लिए खासकर हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में अब तो सख्त कानून बनाकर उनका कठोरता से अनुपालन सुनिश्चित करना ही आपदा से बचाव का एकमात्र उपाय बचा है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 14-09-24

कानून रौंदती सरकारें

संपादकीय

अपराध में शामिल होना, किसी की संपत्ति को ढहाने का आधार नहीं हो सकता, बुलडोजर से देश का कानून रौंदा जा रहा है, यह सुप्रीम कोर्ट ने कहा। सुप्रीम कोर्ट गुजरात के खेड़ा जिले के एक परिवार की अपने घर बुलडोजर कार्रवाई की धमकी के खिलाफ याचिका दायर पर सुनवाई कर रहा था। तीन जजों की बेंच ने कहा कि एक सदस्य द्वारा कथित अपराध के लिए पूरे परिवार का घर गिरा कर दंडित नहीं किया जा सकता। पीठ ने स्पष्ट किया कि किसी ने अपराध किया है या नहीं, यह सिर्फ अदालत ही तय कर सकती है। अदालत ने नोटिस जारी कर राज्य सरकार से चार हफ्तों में जवाब भी मांगा है। इससे पहले भी शीर्ष अदालत ने बुलडोजर कार्रवाई को लेकर दिशा-निर्देश जारी करने की बात की थी। आरोपियों के खिलाफ बुलडोजर एक्शन की उम्र की योगी सरकार ने की थी। देखा-देखी मप्र, राजस्थान और गुजरात जैसे राज्य भी यही तरीका इख्तियार करने लगे । किसी भी दोषी पर आरोप सिद्ध हुए बगैर सरकार ऐसा कोई कदम उठाने को स्वतंत्र नहीं है। बावजूद इसके विवादित मामलों, अपराधियों और राजनीतिक लाभ के लोभ में राज्य सरकारें अपनी ताकत दर्शाने के लिए लगातार कानून की अवमानना कर रही हैं। जब तक आरोप सिद्ध नहीं होता, तब तक किसी तरह का निर्णय थोपा जाना अनुचित है। कानूनी तौर पर निर्मित इमारत पूरे परिवार या कुनबे के किसी अन्य सदस्य के नाम होने पर भी उसे यूं ढहाया जाना न्यायोचित नहीं हो सकता। जैसा कि पीठ ने कहा, अपराध तय करना अदालत का काम है। इसमें अति उत्साह में सरकार का बिला- वजह हस्तक्षेप कानून को हाथ में लेना है जबकि शहरों- महानगरों में व्यस्त बाजारों, मंहगे इलाकों व आबादी के बीच होने वाले अतिक्रमणों से जनता आजिज आ चुकी है। उन पर बुलडोजर चलाने

या उन्हें ढहाने की कोई बात नहीं की जाती। अपराधियों और माफिया पर नकेल कसने के अन्य तरीकों पर सरकारों को कार्रवाई करनी चाहिए। सजा सिर्फ अपराधी को ही मिले। उसके समूचे परिवार को बेघर कर सड़क पर ला देना न्यायोचित नहीं है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 14-09-24

कहीं आपके बच्चे स्क्रीन पर ज्यादा वक्त तो नहीं बिता रहे

क्षमा शर्मा, (वरिष्ठ पत्रकार)

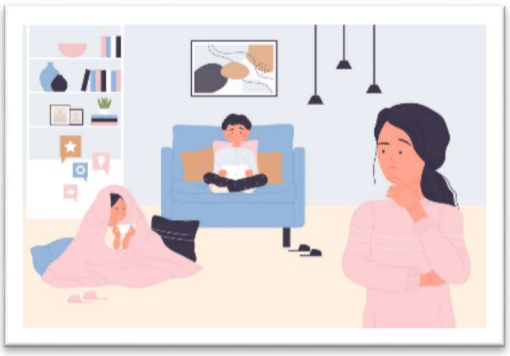

पिछले दिनों स्वीडन के समाज कल्याण व जन-स्वास्थ्य से जुड़े मंत्री ने कहा कि दो वर्ष तक के बच्चों को किसी भी तरह के डिजिटल उपकरण का उपयोग नहीं करने देना चाहिए, क्योंकि माता-पिता, बाल-रोग विशेषज्ञ और सरकार इस तकनीकी माहौल से कैसे निपटा जाए, इसकी कोशिशों में जुटे हैं। मंत्री ने यह भी कहा कि हमें चीजों को फिर से अपने नियंत्रण में लेना होगा। बचपन को नए सिरे से परिभाषित करना होगा और बच्चों को उनका बचपन वापस लौटाना होगा। उनकी मासूमियत बचाने के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य का सही विकास हो, यह भी आवश्यक है।

स्वीडन ने 'स्क्रीन टाइम' के बारे में जो अपनी रिपोर्ट जारी की है, उसकी प्रमुख बातें हैं- दो साल तक के बच्चों को स्क्रीन से बिल्कुल दूर रखा जाए। दो से पांच साल तक के बच्चे एक घंटे, छह से बारह साल के बच्चे दो घंटे और किशोर तीन घंटे से ज्यादा वक्त स्क्रीन पर न बिताएं। सोते वक्त या शयन कक्ष में मोबाइल या किसी किस्म की स्क्रीन का प्रयोग बिल्कुल वर्जित किया जाए। जाहिर है, माता-पिता और अभिभावकों को खास ध्यान देना होगा कि उनके बच्चे कम से कम समय किसी स्क्रीन पर बिताएं। इसके लिए वे अपने बच्चों से ज्यादा बातचीत करें, उन्हें अधिक समय दें। यही नहीं, उनका बच्चा कितना समय स्क्रीन पर बिता रहा है, इस पर नजर जरूर रखें।

अमेरिका और आयरलैंड के बाल रोग विशेषज्ञों का कहना है कि जब तक बच्चा डेढ़ साल का न हो जाए, तब तक उसे मोबाइल या किसी भी तरह की स्क्रीन से दूर रखा जाना चाहिए। फ्रांस में तो इससे भी आगे की बात कही गई कि तीन साल से पहले बच्चों के हाथों में मोबाइल नहीं थमाना चाहिए और किसी भी तरह की स्क्रीन से उन्हें दूर रखना चाहिए। इसमें टेलीविजन स्क्रीन भी शामिल है। विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि जो बच्चे अभी

बोलना, चलना सीख रहे हैं, उनका किसी भी तरह की स्क्रीन पर समय बिताना उन्हें कुछ नहीं सिखाता। एक सर्वे में यह भी पाया गया था कि जो बच्चे स्क्रीन पर ज्यादा समय बिताते हैं, वे देर से बोलना सीखते हैं।

भारत में भी कोई अच्छी स्थिति नहीं है। यहां भी बच्चे समझते हैं कि लोगों से दूरी और फोन से नजदीकी बहुत अच्छी बात है। विशेषज्ञ लगातार कह रहे हैं कि बच्चों को तकनीक से दोस्ती के मुकाबले इंसान से दोस्ती सिखानी चाहिए। पिछले दिनों डेढ़ लाख लोगों पर किए गए एक सर्वे में यह बात सामने आई थी कि भारत में मानसिक स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा है। हमारे बच्चों और युवाओं में मोबाइल की लत बढ़ती जा रही है। इसके अलावा, यह भी देखने में आया है कि बच्चे और किशोर स्क्रीन टाइम के दौरान कुछ न कुछ खाते रहते हैं। अक्सर वे अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड, जिसको जंक फूड कहा जा सकता है, ही खाते है। स्वास्थ्य विशेषज्ञ स्थापित कर चुके हैं कि इनका अधिक उपयोग सेहत के लिए बहुत हानिकारक है। जाहिर है, इससे मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ते हैं, क्योंकि दोनों का आपस में गहरा संबंध है।

स्क्रीन टाइम में बढ़ोतरी के कारण बच्चे अब परिवार वालों से कम बातचीत करते हैं, दोस्तों से मिलते-जुलते नहीं, उनके बीच आपसी संवाद लगातार कम होता जा रहा है। वे बाहर खेलना भी पसंद नहीं करते। इससे सामाजीकरण की प्रक्रिया से वे लगातार बाहर होते जा रहे हैं और अलग-थलग पड़ रहे हैं। यह अकेलापन उनके विकास और भविष्य के लिहाज से बेहद घातक है।

इस स्थिति के लिए सिर्फ तकनीक या बच्चों-किशोरों को दोष देना ठीक नहीं है। सच तो यह है कि बहुत हद तक माता-पिता इसके लिए जिम्मेदार हैं। वे अक्सर बच्चों की जिज्ञासा से बचने के लिए उनके हाथ में बचपन से ही मोबाइल पकड़ा देते हैं। कई बार जब कोई रिश्तेदार घर पर आता है, या माता-पिता कहीं जाते हैं, तो वे बच्चों के हाथों में मोबाइल देकर निश्चिंत हो घंटों गपशप करते हैं। इसके कारण भी बहुत सारे छोटे बच्चे मोबाइल की लत के शिकार हो रहे हैं। बच्चों के लिए काम करने वालों की एक बड़ी चुनौती यह भी है, माता-पिता के लिए भी, पर शायद उनका ध्यान इस ओर है ही नहीं। बहुत से लोग सुझाव देते हैं कि इस बारे में माता-पिता की भी ट्रेनिंग की जानी चाहिए। लेकिन ट्रेनिंग कैसे होगी? अगर शहरों में हो भी जाए, तो गांवों के अभिभावक क्या करें, इसके बारे में उन्हें कौन, कैसे, बताएगा।